आंबेडकर पथ । वर्ष : 1 । अंक : 01 । जनवरी-जून 2024 । ISSN : 3048-7781

डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर और उनके शिक्षा संबंधी विचार

–डॉ. शिवु कुमार

सारांश : शिक्षा का व्यक्ति के जीवन में कितना महत्त्व है, यह डॉ. आंबेडकर ने जिन परिस्थितियों में शिक्षा अर्जित की, उसको जान लेने से स्पष्ट हो ही जाता है। आंबेडकर का मानना था कि पेट काट कर भी पढ़ना पड़े तो पढ़ाई को ही अधिमान दो। डॉ. आंबेडकर ने अपनी उच्च शिक्षा विदेशों में जरूर अर्जित की थी, उसके बावजूद भी डॉ. आंबेडकर शिक्षा में भारतीय भाषाओं को विशेष महत्त्व देते थे। विशेषकर संस्कृत को वह प्रथम स्थान पर रखते थे। हालांकि जातीय भेद के चलते वह संस्कृत अपने स्कूल में नहीं पढ़ सके थे। इस शोध पत्र में डॉ. आंबेडकर के शिक्षा संबंधी विचारों को समझने का प्रयास किया गया है जिससे हमारे समाज को सही दिशा मिलने और शिक्षा के मानव समाज में महत्त्व को जानने में यह शोध सहायक होगा।

मुख्य शब्द–वंचित, शिक्षित, संगठित, संघर्ष, सामाजिक परिवर्तन

प्रस्तावना : भीमराव आंबेडकर ने देश के निर्धन और वंचित समाज को प्रगति करने का जो सुनहरा सूत्र दिया था, उसकी पहली इकाई शिक्षा ही थी। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि वे गतिशील समाज के लिए शिक्षा को कितना महत्त्व देते थे। उनका त्रिसूत्र था–शिक्षा, संगठन और संघर्ष। वे आह्वान करते थे, शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो। पढ़ो और पढ़ाओ। इस सूत्र का अर्थ स्पष्ट है कि संगठित होने और न्याययुक्त संघर्ष करने के लिए प्रथम शर्त शिक्षित होने की ही है। इस मामले में बाबासाहेब

डॉ. आंबेडकर पीठ, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला
Email : kumarshivu907@gmail.com

की दृष्टि एकदम साफ है। साधन सम्पन्न समाज के बच्चों के लिए जीवन में प्रगति के अनेक रास्ते हैं। वे अपने पैतृक साधनों का प्रयोग कर नये रास्ते तलाश भी सकते हैं और पहले से ही उपलब्ध रास्तों का अपने हित के लिए सुविधा से उपयोग भी कर सकते हैं। कम से कम जीवन की भौतिक प्राप्तियों के क्षेत्र में तो यह सब हो ही सकता है। लेकिन वंचित समाज के बच्चों के लिए, साधनों के अभाव में आगे के रास्ते बंद हो जायेंगे और वे जीवन भर दुःख और वेदना का नारकीय जीवन ही ढोते रहेंगे, ऐसा नहीं है। उनके लिए एक ऐसा रास्ता खुला है, जो साधन सम्पन्न लोगों को उपलब्ध सभी रास्तों से भी ज्यादा प्रभावी और गुणकारी है। वह रास्ता है—शिक्षा प्राप्त करने का। शिक्षा से भौतिक जगत में गतिशील होने की क्षमता तो प्राप्त होती ही है, बौद्धिक विकास भी होता है। यही कारण था कि बाबासाहेब ने शिक्षा को प्राथमिकता दी है। ऐसा उन्होंने कहा ही नहीं बल्कि स्वयं अपने उदाहरण से करके भी दिखाया।

सामाजिक उन्नति शिक्षा का मुख्य उद्देश्य

बाबासाहेब ने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनेक कष्ट सहे, लेकिन उच्च शिक्षा प्राप्त करने के अपने ध्येय पर अडिग रहे। पाठशाला के दिनों में जाति भेद का लेकर उनको जो दिक्कतें उठानी पड़ीं, उनको शायद दोहराने की जरूरत नहीं है, वे सर्वविदित ही हैं। लेकिन जैसे ही आगे पढ़ने का वक्त आया, भीमराव जी के पिता जी की नौकरी छूट गई। पुत्र में पढ़ने की और पिता में पढ़ाने की उत्कट लालसा और पैसे का संकट। नौकरी की संभावना तलाशने परिवार मुंबई में आ गया। आंबेडकर की आगे की पढ़ाई वहीं हुई। बड़े शहर में जाति के कारण शायद उतना संकट नहीं था लेकिन अब तो आर्थिक संकट गहरा रहा था। लेकिन भीमराव आंबेडकर ने हठ नहीं छोड़ा। आगे की कहानी अब अल्पज्ञात नहीं है।

रियासती सहायता से भीमराव विदेश में उच्च शिक्षा के लिए गए और वहाँ विपरीत आर्थिक परिस्थितियों में भी अध्ययन जारी रखा। केवल इतना ही नहीं, लंदन में भी उनको चिंता रहती थी कि उनकी पत्नी रमाबाई भी कुछ पढ़ रही है या नहीं। धन सम्पदा तो आनी जानी है लेकिन शिक्षा जैसा अनमोल धन अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। उन्होंने लंदन से अपनी पत्नी को पत्र लिखा, ''तुम्हारी पढ़ाई चल रही है, यह बहुत प्रसन्नता की बात है। पैसे की व्यवस्था करने का प्रयास कर रहा हूँ। मेरे पास पैसे नहीं हैं, इसलिए सीमित मात्रा में भोजन कर पा रहा हूँ फिर भी आप लोगों की व्यवस्था कर पा रहा हूँ। पैसे भेजने में देर हुई और तुम्हारे पास के पैसे समाप्त हो जायें तो अपने अलंकरण बेच कर खाओ। आने के बाद फिर बनवा दूँगा। यशवंत व मुकुंद की पढ़ाई कैसी चल रही है?'' आंबेडकर

का फरमान साफ है। पेट काट कर भी पढ़ना पड़े तो पढ़ाई को अधिमान दो। यह सारी कथा लिखने का उद्देश्य मात्र इतना ही है कि विदेश में जाकर उन्होंने शिक्षा से इतर, आर्थिक रूप से सम्पन्नता के लिए रास्ते तलाशने की कोशिश नहीं की। वे रास्ते उन दिनों भी अमेरिका व ब्रिटेन में सहजता से उपलब्ध थे। लेकिन बाबासाहेब ने स्वयं को ज्ञानार्जन के लिए ही समर्पित कर दिया। क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे कि वे केवल अपनी प्रगति का रास्ता नहीं तलाश रहे, बल्कि भारत के पूरे वंचित समाज के लिए रास्ता तलाश रहे हैं और वह रास्ता केवल और केवल शिक्षा के माध्यम से ही निकलेगा। वे अपने आचरण से इसका उदाहरण प्रस्तुत करना चाहते थे। वड़ोदरा के महाराजा और भीमराव आंबेडकर का यह संवाद जो चांगदेव खैरमोडे ने उद्धृत किया है, अत्यंत महत्त्वपूर्ण है–

महाराजा–तुम किस विषय की पढ़ाई करना चाहते हैं?

भीमराव–मैं समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और विशेष रूप से पब्लिक फायनांस की पढ़ाई करना चाहता हूँ।

महाराजा–इस विषय की पढ़ाई करके तुम आगे क्या करना चाहते हो?

भीमराव–इस विषय के अध्ययन से मुझे इस प्रकार के रास्ते दिखाई देंगे, जिससे कि मैं अपने समाज की पतनावस्था को सुधार सकूँ।

महाराजा (हँसते हुए)–लेकिन तुम हमारी नौकरी करोगे या नहीं? फिर तुम पढ़ाई, नौकरी और समाज सेवा आदि सभी बातें एक साथ कैसे पूरी कर सकोगे?

भीमराव–यदि महाराजा ने मुझे उस तरह का मौका दिया, तो मैं ये सारी बातें सही ढंग से पूरी करके दिखा दूँगा।[1]

भीमराव की योजना स्पष्ट है। वंचित समाज की दीन-हीन अवस्था को कैसे ठीक करना है, इसका रास्ता भी शिक्षा से ही पता चलेगा। एक बार रस्ता पता चल जाए, तो उसे फतेह करना इतना मुश्किल नहीं है। लेकिन ध्यान रखना होगा, आंबेडकर के सूत्र में शिक्षा, एक बड़ी शृंखला का पहला हिस्सा है। एकता और संघर्ष उसके साथ ही जुड़ा हुआ है। बाबासाहेब जब महाराजा को पढ़ाई, नौकरी और समाज सेवा एक साथ साध लेने का संकल्प सुनाते हैं तो उनके मन में शिक्षा, एकता और संघर्ष का यह त्रिसूत्र ही दिखाई देता है।

शिक्षा की त्रिसूत्रीय संकल्पना

भीमराव आंबेडकर ने देश के निर्धन और वंचित वर्ग को समाज को प्रगति करने का जो सूत्र दिया, इसकी पहली इकाई शिक्षा ही थी। उनके तीन सूत्र थे–शिक्षा, संगठन और संघर्ष। वे आह्वान करते थे, शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो। केवल स्वयं

के शिक्षित होने से काम नहीं चलेगा। इसलिए आंबेडकर कहा करते थे, पढ़ो और पढ़ाओ। बाबासाहेब शिक्षा की महत्ता रेखांकित करने के साथ-साथ उसको प्राप्त करने के पात्र की भी चर्चा करते हैं। वे कहते हैं, ''शिक्षा दुधारी शस्त्र है। इसलिए उसे चलाना खतरे से भरा रहता है। चरित्रहीन व विनयहीन सुशिक्षित व्यक्ति पशु से भी अधिक खतरनाक होता है। यदि सुशिक्षित व्यक्ति की शिक्षा गरीब जनता के हित विरोधी होगी, तो वह व्यक्ति समाज के लिए अभिशाप बन जाता है। ऐसे सुशिक्षितों को धिक्कार है। शिक्षा से चरित्र अधिक महत्त्व का है। युवकों की धर्म विरोधी प्रवृति देखकर मुझे दुःख होता है। कुछ लोगों का मानना है कि अफीम की गोली है। परन्तु यह सत्य नहीं है। मेरे अंदर जो अच्छे गुण हैं अथवा मेरी शिक्षा के कारण समाज का जो कुछ हित हुआ होगा, वे मेरे अंतर्मन की धार्मिक भावना के कारण ही है। मुझे धर्म चाहिए। परन्तु धर्म के नाम पर चलने वाला पाखंड नहीं।''[2] बाबासाहेब का अभिमत स्पष्ट है। शिक्षा जनहितकारी होनी चाहिए। शिक्षा से प्राप्त योग्यता का उपयोग वंचित समाज के कल्याण के लिए किया जाना चाहिए न कि उसके शोषण के लिए। शिक्षा का उद्देश्य बहुजन हिताय बहुजन सुखाय होना चाहिए न कि स्व-हिताय स्व-सुखाय।

शिक्षा, शिक्षक व सदाचार

आंबेडकर शिक्षा और शील को एक-दूसरे का पूरक मानते थे। शील के बिना शिक्षा का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। शीलवान व्यक्ति पारम्परिक अर्थ में शिक्षित न भी हो तो चल सकता है। क्योंकि शील साधना अपने आप में ही शिक्षा है। लेकिन शिक्षित व्यक्ति शीलविहीन हो इससे बड़ी त्रासदी और कोई नहीं हो सकती। आंबेडकर कहते हैं—''इसमें कोई संदेह ही नहीं कि शिक्षा का महत्त्व है। लेकिन शिक्षा के साथ ही मनुष्य का शील भी सुधरना चाहिए। शील के बिना शिक्षा का मूल्य शून्य है।[3] ज्ञान तलवार की धार जैसा है। तलवार का सदुपयोग अथवा दुरुपयोग उसको पकड़ने वाले पर निर्भर करता है। वह उससे किसी का खून भी कर सकता है और किसी की रक्षा भी कर सकता है। यदि पढ़ा-लिखा व्यक्ति शीलवान होगा तो वह अपने ज्ञान का उपयोग लोगों के कल्याण के लिए करेगा। लेकिन यदि उसका शील अच्छा नहीं होगा तो वह अपने ज्ञान से लोगों का अकल्याण भी कर सकता है।'' भीमराव आंबेडकर ने स्वयं अपनी शिक्षा का उपयोग अपनी सुख सुविधा के लिए नहीं बल्कि वंचित समाज के कल्याण के लिए किया।

शिक्षा का इतना महत्त्व है तो शिक्षा देने वाले शिक्षक का महत्त्व तो उससे भी कई गुना बढ़ जाता है। क्योंकि शिक्षा केवल किताबों से नहीं मिलती, वह शिक्षक के आचरण

व व्यवहार से भी मिलती है। शिक्षा संस्कार बनाती है और संस्कार शिक्षक के आचरण से ही बनते हैं। इसलिए शिक्षा के मामले में बाबासाहेब शिक्षक की भूमिका और चयन को लेकर अत्यंत सतर्क रहते थे। उनका मानना था कि शिक्षक राष्ट्र का सारथी होता है। इसलिए शिक्षक बुद्धि से होशियार, वृत्ति से निरीक्षक व मर्मज्ञ होना चाहिए क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य का आत्मिक उन्नयन होता है और वह तभी हो सकता है जब शिक्षक योग्य हो।[4] वेतनमान के लिए काम करने वाला प्राचार्य, संस्था को अपना मानकर त्याग व आस्थापूर्वक कार्य नहीं करता। वह केवल स्वयं का विचार करता है। लेकिन मुझे तो योग्य प्राचार्य चाहिए।'' शिक्षा और शिक्षक के मामले में बाबासाहेब जाति भेद से कहीं दूर थे।

संदर्भ :

1. चांगदेव भवानराव खैरमोडे, बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर जीवन और चिंतन, खण्ड एक, पृष्ठ 76.
2. दत्तोपंत ठेंगड़ी, डॉ. आंबेडकर और सामाजिक क्रांति की यात्रा, पृष्ठ 99.
3. -वही-, पृष्ठ 98
4. -वही-, पृष्ठ 98